वास्तुशास्त्र का अर्थ और प्रयोजन

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी
संस्कृत विभाग,
डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

'वास्तु' शब्द का अर्थ है-निवास करना। जिस भूमि पर मनुष्य निवास करते हैं, उसे 'वास्तु' कहा जाता है। वास्तुशास्त्र में गृहनिर्माण सम्बन्धी विविध नियमों का प्रतिपादन किया गया है। वास्तु शब्द 'वस्' धातु से बना है। यह 'वस्' धातु किसी एक स्थान में वास करने की द्योतक है। उणादि सूत्र 'वसेस्तुन्' से इसमें तुन् प्रत्यय लगाया गया है। वास्तु का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- 'वसन्त्यस्मिन्नितिवास्तुः'। अर्थात् वह भवन जिसमें मनुष्य निवास करते हैं, उसे वास्तु कहते हैं। यह मानव आदि के निवास-स्थान का परिचायक है। तत्त्ववेत्ता तपःपूत ऋषि-मुनि-महात्माओं ने विश्वकल्याण की भावना से भावित होकर अनेक शास्त्रों का आविर्भाव किया, जिनमें वास्तुशास्त्र अन्यतम है। भारतीय चिन्तन में सभी विद्याएं अध्यात्ममूला हैं। वास्तुशास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। वास्तु मण्डल एवं वास्तुपुरुष की परिकल्पना ने इस शास्त्र को धार्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया। भवन का निर्माण भोगवाद से हटकर ईश्वरीय प्रसाद बन गया। वास्तुशास्त्र एक विज्ञानपूर्ण विद्या है, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्ट है। वास्तुशास्त्र के अन्तर्गत मूलरूप से भवन निर्माण, कार्यस्थल, मन्दिर, तालाब, बगीचा और अन्य भवनों का समावेशन किया जाता है।

वास्तुशास्त्र ज्ञान एवं विज्ञान की वह शाश्वत विद्या है जो मानव को सुख, शान्ति व समृद्धि प्रदान करने के साथ-साथ जीवात्मा को चारों पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करती है। वास्तु का मूलभूत सिद्धान्त है कि प्रकृति के स्थूल व सूक्ष्म प्रभावों को मानवमात्र के अनुकूल उपयोग में लेना। कोई भी निर्माण कार्य इस प्रकार हो कि प्रकृति के स्थूल व सूक्ष्म प्रभाव उसको करने वाले के दैहिक, भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति में सहायक बनें अर्थात् जो भी निर्माण कार्य हो वह पञ्च तत्त्वों के अनुकूल हो जिससे मानवमात्र की सहज ही विचार शक्ति एवं कार्य शक्ति संतुलित रूप से कार्य करे।

E-Learning Material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अमरकोष के अनुसार-'गृहरचनावच्छिन्नभूमे' अर्थात् गृह-रचना के योग्य अविच्छिन्न भूमि को वास्तु कहते हैं। मत्स्य पुराण उद्धृत करते हुए हलायुध कोश में कहा गया है-

वास्तु संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम्।
ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे त्यजेत्।।

अर्थात् संक्षेप में वास्तु ईशान आदि कोण से प्रारम्भ होकर भवन-निर्माण की वह कला है, जो घर को विघ्न-बाधाओं एवं प्राकृतिक उत्पातों से बचाती है।

वास्तुविद्या के विकास की परम्परा

वास्तुविद्या के विकास की सुसमृद्ध परम्परा रही है। मत्स्य महापुराण में वास्तु शास्त्र के आचार्यों की चर्चा की गई है-

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः।।
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती।।
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।

अर्थात् भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति-ये अठारह वास्तुशास्त्र के उपदेष्टा माने गए हैं।

इन्हीं आचार्यों की परम्परा में वराहमिहिर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वराहमिहिर का मान्यता है कि वास्तु ज्ञान ब्रह्माजी के पास से मुनि परम्परा में विकसित हुआ। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ बृहत्संहिता में वास्तु के सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना की गई है।

वास्तुशास्त्र की महत्ता और प्रयोजन

वास्तुशास्त्र की महत्ता जीवनोपयोगी विषय के रूप में है। व्यक्ति जिस स्थान पर निवास करता है, वह सर्वप्रकारेण उपयोगी और निरापद सिद्ध हो, इसीलिए हमारे महापुरुषों ने वास्तुविद्या का विकास किया। ऋषियों-मुनियों का कथन है कि स्त्री, पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी आदि कष्टों से

E-Learning Material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

रक्षा-सुरक्षा करने वाला गृह ही है। विधिपूर्वक गृहनिर्माणकर्ता को बावड़ी, देवालय आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है। इसीलिए विश्वकर्मा आदि देवशिल्पियों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का निर्देश प्रदान किया है-

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदम्।
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।

वास्तुसारसङ्ग्रह में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सुख, धनधान्य, ऐश्वर्य, सन्तति सहित निरन्तर सुख के लिए गृह का सुलक्षण होना आवश्यक है-

सुखं धनानि ऋद्धिश्च सन्ततिः सर्वदा नृणाम्।
प्रियाण्येषान्तु संसिद्ध्यै सर्वं स्याच्छुभलक्षणम्।।

मनुष्य की सुख-सुविधा हेतु देश-पुर-ग्राम निवास और आसन ये सभी समानरूप से अपेक्षित हैं अर्थात् सबकी अनुकूलता होने पर शुभ और प्रतिकूल होने पर अशान्ति का वातावरण बना रहता है।

गृह की आवश्यकता पर बल देते हुए बृहद्वास्तुमाला में कहा गया है कि दूसरे के घर में रहकर किये गये श्रौत-स्मार्त आदि समस्त शुभ कार्य अपने लिए निष्फल हो जाते हैं क्योंकि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है-

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।

वास्तव में दूसरे के गृह में निवास स्वतन्त्रता एवं स्वाभिमान की दृष्टि से सर्वथा त्याज्य है। इसकी निन्दा चाणक्य के शब्दों में इस प्रकार है-'परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति'।

E-Learning Material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi